गीता का 'निष्काम कर्म'

नीलू जायसवाल*

गीता का कर्मयोग निष्काम कर्मयोग है। गीता का आदेश निष्काम भाव से कर्म करने के लिए है। निष्काम कर्मयोग का अर्थ है कि हम कर्म को सदैव साध्य के रूप में देखे, उसे कभी भी साधन के रूप में ग्रहण न करें। हम कर्म तो करें किन्तु कर्मफल में आसक्ति न रखें।

निष्काम कर्मयोग का वर्णन गीता के दूसरे अध्याय के 39वें श्लोक से आरम्भ हो जाता है। सम्पूर्ण गीता में कर्म के प्रति अहंता, ममता और आसक्ति का विरोध किया गया है, इसलिए इस प्रकार का विचार मिलता है कि तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है, फल में नहीं, इसलिए तुम कर्मफल की वासनावाला मत बनों और कर्मों को छोड़ देने का विचार भी मत करो।[1]

गीता की मान्यता है कि कोई भी व्यक्ति क्षण मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। कर्म करना व्यक्ति का अधिकार और कर्त्तव्य दोनों हैं। उसे कर्म करना ही चाहिए लेकिन आदेश दिया गया है–"मा कर्मफल हेतुर्भू" अर्थात फलार्थी मत बनो, कर्मफल की वासना से युक्त मत रहो। इसका कारण यह है कि "फलेसक्तो निबध्यते"[2] फलासक्ति से कर्मबन्धन दृढ़ होता है। इसलिए गीता में फलेच्छा से रहित होकर कर्म करने की शिक्षा दी गयी है क्योंकि "कृपणाः फलहेतवः"[3] अर्थात फल की इच्छा रखने वाले कृपण (दया के पात्र) होते हैं।

गीता सकाम भाव से किये जाने वाले कर्मों के दुष्परिणामों को भी उल्लिखित करती हैं इसके अनुसार, 'सकाम होकर कर्म करने से कर्म में आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से आकांक्षा जन्म लेती है। आकांक्षा से क्रोध और क्रोध से मोह उत्पन्न होता है। मोह से स्मृति नष्ट होती है। स्मृति– नाश से बुद्धि नष्ट होती है और बुद्धि नष्ट होने से सब कुछ नष्ट हो जाता है।[4] अतः फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करना चाहिए।

यहां यह शंका हो सकती है कि एक ओर गीता में कर्म करने का आदेश दिया गया है, कर्म को अधिकार और कर्त्तव्य माना गया है और दूसरी ओर फलेच्छा से रहित होकर कर्म करने को कहा गया है तो फलेच्छा या फल की कामना के बिना कर्मों में प्रवृत्ति कैसे होगी? इसके समाधान स्वरूप यह कहा जा सकता है कि कामना की पूर्ति और निवृत्ति दोनों के लिए कर्मों में प्रवृत्ति हो सकती है। गीता में स्पष्ट किया गया है कि अज्ञानी व्यक्ति कामना की पूर्ति के लिए कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और ज्ञानी पुरूष (योग) आसक्ति को त्याग कर आत्मशुद्धि के लिए करते हैं।[5]

वस्तुतः कर्म करने का गीता का आदेश आवश्यकता (उद्देश्य) की पूर्ति के लिए ही है, कामना (इच्छा) की पूर्ति के लिए नहीं। कामना की पूर्ति के लिए वही मनुष्य कर्मों में प्रवृत्त होते हैं जो अपने वास्तविक उद्देश्य को भूल गये हैं, उससे विमुख हो गये हैं। ऐसे ही लोगों को दीन या दया का पात्र कहा गया है। इसके विपरीत जो व्यक्ति उद्देश्य को ध्यान में रखकर कामना की निवृत्ति के लिए कर्म करते हैं उन्हें मनीषी[6] कहा गया है।

गीता के अनुसार ऐसे सभी कर्मों का त्याग जो फलाकांक्षा से किये जाते हैं, सन्यास है तथा कर्मों के फलों का परित्याग है–

काम्यानां कर्माणां न्यासं संन्यासं कवयों विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः[7]।।

इसीलिए गीता कर्म करने वाले तथा उसके फल का परित्याग करने वाले को त्यागी कहती है (वस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागी इत्यभिधीयते)। गीता की यह भी मान्यता है कि निष्काम भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त करता है। इसी कारण गीता कर्मयोग को कर्मसंन्यास से श्रेष्ठ मानती है, यद्यपि उसकी दृष्टि में दोनों ही अभीष्ट हैं उसकी दृष्टि में कर्मफल में आसक्ति का परित्याग करके कर्म करने वाला ही संन्यासी एवं योगी है। इसीलिए कृष्ण ने अर्जुन से स्पष्ट कहा, 'हे अर्जुन! तुम्हारा अधिकार केवल कर्म में है, उसके फल में कदापि नहीं। तुम कर्मफल का हेतु भी न बनो और अकर्म में तुम्हारी आसक्ति भी न हो'–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि[8]।।

यहाँ गीता का स्पष्ट मत है कि अकर्म बुरा है। व्यक्ति का अधिकार केवल कर्म करने में है ओर उसे कर्मफल का हेतु, फलाकांक्षा से युक्त नहीं होना चाहिए। गीता इसे कर्मों में कुशलता कहती है और यही योग है (योगः कर्मसु कौशलम्)। गीता का विचार है कि समत्वभाव ही योग है। समत्वभाव से युक्त व्यक्ति ही फलाकांक्षा से रहित होकर कर्म करता है। ऐसा व्यक्ति सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय, शत्रु–मित्र और मान–अपमान को समान समझकर कर्म करता है। इस प्रकार गीता समत्वभाव से निष्काम होकर कर्म करने का आदेश देती है। प्रो0एस0 हिरियभा का कथन है, 'गीता कर्म में त्याग का उपदेश देती है, कर्म के त्याग का नहीं।'

शोध छात्रा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

आधुनिक पाश्चात्य नैतिक दर्शन में प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट ने भी गीता के समान ही निष्काम कर्मयोग का विवेचन किया है। उसका सिद्वान्त 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य' नाम से जाना जाता है। काण्ट ने भी इस बात पर बल दिया है कि व्यक्ति को अपने कर्म का सम्पादन कर्तव्यभावना से करना चाहिए, स्वार्थ या सहज प्रवृत्ति से प्रेरित होकर नहीं। किन्तु गीता का निष्काम कर्मयोग काण्ट के कर्तव्य के लिए कर्तव्य सिद्धान्त से उच्चतर है। काण्ट के नीतिशास्त्र में कर्म सदैव साध्य बना रहता है जबकि गीता में कर्म अपने से उच्चतर कर्म के लिए सदैव साधनस्वरूप होता है, क्योंकि गीता की मान्यता है कि बिना किसी प्रयोजन के मन्दबुद्धि व्यक्ति भी कर्म में प्रवृत्त नहीं होता। काण्ट के नैतिक दर्शन में नियमपालन ही स्वतः शुभ है और मनुष्य नियम के लिए होकर रह जाता है, जबकि गीता की दृष्टि में लोककल्याण स्वतः साध्य है और नियम इस साध्य की सिद्धि के लिए साधनस्वरूप बना रहता है। स्पष्ष्ष्ष्

निष्काम कर्मयोग में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के दो परस्पर विरोधी आदर्शों का समन्वय होता है। प्रवृत्ति का आदर्श कर्म का आदर्श है, सुख का आदर्श है। इससे प्रेरित होकर व्यक्ति समाज में रहते हुए सुख प्राप्ति हेतु कर्म करते हैं। इसमें निहित स्वार्थ का तत्व जीवन के सच्चे आध्यत्मिक आदर्श तक पहुँचने से रोकता है। निवृत्ति का आदर्श वैराग्य का आदर्श है जो सभी कर्मों के परित्याग एवं सांसरिक सम्बन्धों से विमुख होने का समर्थक है। यह तपस्यामय जीवन और त्याग के निषेधात्मक आदर्श का समर्थक है। इनमें से प्रथम कर्मफल में आसक्ति सिखाता है और द्वितीय अकर्म की ओर प्रवृत्त करता है। चूँकि गीता कर्मफल में आसक्ति को उतना ही बुरा मानती है जितना अकर्म को। अतः यह प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों के समन्वय पर बल देती है। दोनों का समन्वय कर्मयोग, निष्काम कर्मयोग में होता है। इसमें कर्म का त्याग भी नहीं होता और त्याग का आदर्श भी सुरक्षित रहता है।

गीता के निष्काम कर्मयोग में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का भी समन्वय होता है। गीता प्रत्येक व्यक्ति से अपने कर्तव्य कर्मों के सामाजिक कर्त्तव्यों के स्वधर्म के सम्पादन का आग्रह करती है। इसीलिए यह अकर्मण्यता का विरोध करती है। पुनः गीता फलाकांक्षा का परित्याग करके कर्म को ईश्वर को समर्पित करने का आग्रह करती है। इसके अनुसार प्राणी अपने कर्मों से उसकी अराधना करके सिद्धि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार इसमें भक्ति का भी तत्व आ जाता है। वह प्राणियों से आत्मसंयम और इन्द्रियनिग्रह की भी अपेक्षा करती है, क्योंकि इसके अभाव में फलाकांक्षा का त्याग संभव नहीं है। वह सफलता और असफलता, सुख और दुःख, जय और पराजय, लाभ और हानि इन निम्नतर प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने का आदेश देती है। उनका यह भी आग्रह है कि हमें राग–द्वेष, काम–क्रोध अस्मिता–अहंकार

आदि निम्न कोटि के मनोवेगों से परिचालित होकर कर्म नहीं करना चाहिए। यह स्थिति आत्मसंयम एवं इन्द्रिय–निग्रह (ज्ञान) से आती है। अतः इसमें ज्ञान का भी समावेश है। इस प्रकार गीता के निष्काम कर्मयोग में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म तीनों का समन्वय होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गीता की मुख्य शिक्षा निष्काम–कर्मयोग का आदेश है। इसके अनुसार मुझे जानने का प्रयास करो, यदि तुम मेरा चिन्तन नहीं कर सकते हो तो योगाभ्यास करो। यदि यह भी तुम्हारे प्रतिकूल हो तो अपने सभी कर्मों को मुझे अर्पित करके मेरी सेवा करो। यदि यह भी कठिन हो तो अपने कर्तव्य का पालन करो, किन्तु परिणाम की लालसा मत रखों और फल की आकांक्षा भी मत करो। अभ्यास से ज्ञान उत्तम है ज्ञान से ध्यान उत्तम है और कर्मफल का त्याग ध्यान से उत्तम है। इस सन्दर्भ में एनी विसेन्ट का कथन है कि, 'कोई भी तर्क क्यों न हो, प्रत्येक में यह आदेश दिया गया है कि एतत्हेतु लड़ों'। तात्पर्य यह है कि गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'कर्म का आदेश' है।

सन्दर्भ–

1. श्रीमद्भागवत–4/29/49
2. तदैव– 10/48/11
3. विष्णुपुराण–1/19/41
4. भगवदगीता–2/62–63
5. तदैव–5/11
6. फलं त्यक्त्वा मनीषिणः – तदैव; 2/51
7. –18/2
8. 2/47